नई सदी में आदिवासी साहित्य एवं अस्मिता का यथार्थ

धर्मेन्द्रकुमार जगाभाई वडेरा
पीएच.डी., शोधार्थी
हिन्दी भवन, सौराष्ट्र महाविद्यालय, राजकोट

१.प्रस्तावना

आदिवासी समाज वह समाज है, जो आज भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्षरत है । भारत एक ऐसा विशाल राष्ट्र है, जिसमें आदिवासी अधिक संख्या में निवास करते है । सम्पूर्ण भारत का लगभग सात प्रतिशत आबादी आदिवासी समाज का है । भारत जैसे विशाल राष्ट्र में भाषा, धर्म, जाति तथा वेषभूषाओं की भिन्नताओं की तरह आदिवासीयों में भी भिन्नताएँ पायी जाती है । ये समस्त आदिवासी भारत के मूल निवासी है । इन्हें हम जनजाति है । इन आदिवासीयों के अलग-अलग नाम, उनके अनेक उपजातियों उनकी संस्कृति, खान-पान रहस सहन भाषा पूरी तरह से एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी इनकी समस्याएँ इनका जीवन, जीवन साधना और सामान्य तरीके लगभग एक से हैं ।

२.आदिवासी साहित्य एवं अस्मिता का यथार्थ

आदिवासीयों के परिभाषित करते हुए श्यामचरण दुबे लिखते हैं- "जनजातियों की जड़े इस देश में बहुत गहरी और पुरानी है । उनका परिवेश अगम्य भले ही रहा हो, किन्तु उसकी दूरी ने सांस्कृतिक प्रभावों पर स्वाभाविक नियंत्रण रखा है । जनजातियों का समाज बोध सीमित और उथला है । अपनी सांस्कृतिक समग्रता भाषाओं, संस्थाओं, विश्वासों और प्रथाओं के आधार पर समाज के शेष भागों में वे अलग दिखाई पड़ते है । जनजातियाँ समतावादी भले ही न हों किन्तु उनमें आंतरिक स्तरण और विशेषीकरण बहुत कम होता है ।"१

यह एक दु:खद बात है कि इस धरा का मूल निवासी आदिवासी होने के बावजूद तथा कथित सभ्य समाज की बर्बरता से यह समुदाय जंगलों, कंदराओं की ओट में रहने के लिए विवश रहा । प्रकृति से साहचर्य स्थापित कर यह समुदाय जल, जंगल और जमीन के किसी कोने दुबका रहा । विकास और सुविधा संसाधन से वंचित रहा । परन्तु लगातार विस्थापित होने के बावजूद इस समुदाय ने अपनी संस्कृति सभ्यता, भाषा को कभी त्याग नहीं । लाभ-लोभ की प्रवृत्ति से दूर रहकर आदिवासी समुदाय ने सदियों से जंगलों में कंदमूल खाकर, पोखरो, झरनों का पानी पीकर जीवन-यापन किया- पूरे आत्माभिमान सहित अपनी भाषा, सहित और जीवन शैली को जिन्दा रखते हुए जीवन यापन किया ।

लगातार शोषण और विस्थापन के शिकार रहने के कारण ही इस समुदाय में आक्रोश का भाव तीव्र होता रहा। जैसे-जैसे आदिवासी वर्ग शिक्षा आऐर नागरी परिवेश से परिचित हुआ, उसे अपने मूल्य और वजूद का

एहसास सालने लगा । आदिवासी अपने को छला हुआ, विकास की मुख्यधारा से वंचित और समाज का बहिष्कृत हिस्सा समझने लगा । उसमें अपने शोषण का बोध जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसने सभ्य जातियों के अत्याचार के विरूद्ध बगावत का रास्ता अख्तियार किया ।

इसी अत्याचार के विरुद्ध आदिवासीयों में उभरती हुई चेतना के विषय में 'रमणिका गुप्ता' लिखती है- "देखो! हम एक ऐसे समाज है, जिनके मूल्यों का न तो हास हुआ है, न ही उनमें विकृत्ति हाई है । हम सामूहिक जीवन प्रणाली में जीते रहे है । समाज और समूह में रहते है । तुम्हारे द्वारा दी गयी कठिन जिन्दगी को अपने गीतों, अपने नृत्य से भुलाते रहे है तुमने हमें सभ्यता से दूर ठेला / विस्थापित किया / हमने बांसुरी और नगाड़े के माध्यम से आपसी संवाद जारी रखा / अब यह संवाद नाद बनकर फूट पड़ा है / बासुरी को हमने 'मशाल' बना लिया है / अब देश और भाषाओं की सीमाएँ और कबीलों के दायरे लांघकर हम अपने समूचे समाज को रोशन करने के लिए संकल्पबद्ध हो गये हैं हमारी भाषाओं ने अब कलम थाम ली है । हम लिखने लगे हैं कि अब हमने अपनी अस्मिता पहचान ली है ।"[२]

आदिवासी साहित्य में विद्यमान वेदना, पीड़ा, आक्रोश का भाव इसका प्रतीक है । गौरतलब है कि अपनी उपेक्षा और अन्याय के विरोध में आदिवासी समुदाय प्रतिरोध करता रहा है । देश के अनेक हिस्सों में आदिवासी विद्रोह की लम्बी परम्परायें रही है । मिशन विद्रोह जैसे आन्दोलन से आदिवासी समाज की तड़प बेचैनी और संघर्ष का अंदाजा लगाया जा सकता है ।

तीर और कमान आदिवासी की पहचान रहे है । आज यह कलम की शक्ति के रूप में उद्घाटित हो रही है । जैसे-जैसे जागरूकता और चेतना बढ़ रही है, ज्ञान की रोशनी से जंगलवासी परिचित हो रहे हैं, वैसे-वैसे उनमें, अपने स्तत्व बोध और अस्मिता का भान दृढ़ होता जा रहा है । जीवन के बुनियादी हक्कों के लिए वे संगठित हो रहा हैं ।

कलम की ताकत उनके संगठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदाकर रही है । आज आदिवासी लेखन अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक विशिष्टताओं का उद्घाटन कर उस समूची व्यवस्था को प्रशांसित कर रहा है, जिस पर सभ्य कही जाने वाली सभ्यता गुमान करती रही है । यह भी कि यह विमर्श समूची सांस्कृतिक परम्परा के पुनर्पाठ की आवश्यक्ता भी जता रहा है ।

आदिवासी लेखन में कुछ ऐसे साहित्यकार आ रहे हैं, जिन्होंने अपने लेखन का मुख्य उद्देश्य आदिवासी जीवन, उनकी समस्याएँ उनके संघर्ष, चुनौतियाँ एवं क्या सुधार और सम्भावनायें हो सकती है, इसी को लिया है, इन लेखकों में रामदयाल मुण्डा, हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, वन्दाना टेटे, अनुज लुगुन प्रमोद मीणा, रोज केरकेट्टा, बन्नाराम मीणा आदि प्रमुख हैं । जिन्होंने आदिवासी जीवन को समाज के सामने एक विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया । अन्य विमर्शों की तरह आदिवासी समस्याओं की और लोगों का ध्यान आकर्षित किया । आदिवासीयों की संस्कृति, परम्परा, भाषा, लोक कथाओं को समाज के सामने उजागर किया । ये आदिवासीयों के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम साबित हुआ है । वर्तमान में जो आदिवासी नहीं है, वो भी इस विमर्श को पढ़ना, लिखना और समझना चाहता है ।

हरिराम मीणा आदिवासी जीवन एवं उनके अस्तित्व पर आयें संकट के विषय में लिखते हैं– "आदिवासीयों की मूल समस्या अंतत: अस्तित्व के संकट की बन चुकी हैं । आदिवासीयों को तो यह भी पत्ता नहीं कि उन पर यह अस्तित्व का संकट क्यों है ? वे भौचक्का है, किन्तु मौन ! इसीलिए आदिवासी साहित्य के तेवर अलग होंगे ।"[३] अस्तित्व के संकट की चरम सीमा अण्डमान में जो हरिराम मीणा ने देखा, उसे कविता के रूप में इस प्रकार व्यक्ति किया है–

जिन्हों ने हमें गोलियों से भूना
वे इंसान थें
जिन्होंने हमें टापुओं से इधर–उधर खदेड़ा
वे इंसान हैं
और जो हमारी नस्ल को उजाडेंगे
वो इंसान होंगे ।"[४]

आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है । यह ऐसा विमर्श है, जिसमें उस समुदाय की परम्परा, रूढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है, लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलों पर आदिवासी लेखन एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बन रहा है ।

यह एक प्रश्न के तौर पर चर्चा का विषय रहा है कि आदिवासी साहित्य क्या है ? कारण यह है कि इस साहित्य के बहाने जो तथ्य सामने आ रहे है उसमें सभ्य समाज की बर्बरता, अमानुषिकता का उल्लेख मात्र नहीं है, अपितु मानव सभ्यता के इतिहास की जमीनी हकीकत को मटियामेट करने की कहानी भी अभिव्यक्त हो रही है । रमणिका गुप्ता की पुस्तक– "आदिवासी अस्मिता का संकट' में बस्तर के आदिवासी के विषय में कवि लक्ष्मण कावड़े लिखते हैं–

"बस्तर के वनवासी भी देखते हैं सपने
कि आयेगा वक्त एक न एक दिन जरूर
जन इनके कमर में फटा चिथड़ा लंगोट,
फैल जायेगा पूरे शरीर पर
तब अतीत के गर्भ में दब जायेगा ।
उनका अर्ध–नग्न अस्तित्व ।"[५]

वर्तमान में स्त्री और दलित विमर्श की ही तरह आदिवासी विमर्श भी अपने समस्त सरोकारों के साथ उपस्थित हुआ है । इन्होंने भी अपने साहित्य गढ़ लिया है, अपनी भाषा को लिपिबद्ध कर लिया है । अपने लेखकीय प्रतिमान को स्थापित कर लिया है । अपनी रंग–भाषा, अपने प्रतिरोध और संघर्ष के तेवर तथा अपने साहित्यिक सौन्दर्यशास्त्र को भी एक रूप दे दिया है ।

आज आदिवासी साहित्य लगभग सभी विद्याओं में लिखा जा रहा है, जिसमें उपन्यास, कहानी, कविता, लोक कथाएँ आदि प्रमुख है । कुछ आदिवासी उपन्यास ऐसे है जिसे पढ़कर लगता है कि हम आदिवासी दुनिया में ही है । उनकी समस्याओं संघर्षो और जीवन को पढ़कर महसूस होता है कि समाज अभी कहां आगे बढ़ रहा है । इन उपन्यासों में सजीव का जंगल जहाँ शुरू होता है, पांव तले की दूब रणेन्द्र का ग्लोबल गांव का देवता

महाश्वेतादेवी चोट्टि मुण्डा और उसका तीर, महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, उलगुलान बिरसा मुण्डा और उसका आन्दोलन आदि प्रमुख है ।

इन उपन्यासों में आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखाया गया है । रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य के विषय में लिखती है– "आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है ।"

वह प्रकृति का सहयोगी – सह अस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच–नीच, भेद–भाव व छल–कपट से दूर है । वह जमाखोरी या संपति जुटाने की भावना से मुक्त है । वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सब की अभिव्यक्ति है । जीवन के समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है ।"[६]

आदिवासी साहित्य मूलत: जीवन–संघर्ष, जिजीविषा एवं अस्तित्व रक्षण का साहित्य है । यह केवल शब्द बद्ध रचना नहीं है बल्कि मुद्दों पर आधारित शोषित, उपेक्षित बहिष्कृत वर्ग की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध परिवर्तनकारी, एवं शब्दबद्ध साहित्य है ।

आदिवासीयों की मूल समस्या विस्थापन की रही है । वे घने जंगलों में रहते है । जहां कोयले की खदाने, बाकसाइड अनिज संपत्ति भरपूर मात्रा में उपलब्ध है । परन्तु इन खदानों के आसपास से विस्थापित किया जा रहा है । विभिन्न जल परियोजनाओं के अन्तर्गत नदी पर बांध बनाये जा रहे हैं जिसके लिए उन्हें अपनी जमीन से बेदखल किया जा रहा है । रमणिका गुप्ता इसी समस्या के विषय में लिखती हैं–

"आदिवासी बन अधिकारीयों की वारदातों के खिलाफ थे, इनके तथा इनकी मा–बहनों के प्रति कर्मचारीयों द्वारा दुराचार की अनगिनत वारदातों का अंजाम दिया गया । बेईमान, ठेकेदारों और भ्रष्टाचारी वन अधिकारीयों की मिलीभगत से वन के वन उजाड़े जाने लगे तो आदिवासीयों में गहरा शोक पैदा हो गया कि गैर आदिवासी लोगों द्वारा अपनी संपत्ति लूटी जा रही है ।"[७]

जंगल आदिवासी जीवन का मुख्य आधार रहे हैं । उनका काटना आदिवासी समाज की संस्कृति एवं उनकी जातीय अस्मिता को काटना है । इसी के कारण उन्हें अपने स्थान से पलायन करने पर मजबूर होना पड़ रहा है।

वेरियर एलविन आदिवासीयों के विषय में लिखती है– अब उन्हें उत्पीड़न और शोषण से गुजरना पड़ रहा था, क्यों की जल्दी ही व्यापारी और दारू के ठेकेदार वहां आ गये और जब तक उनकी सादगी और अज्ञानता का फायदा उठाते रहे, उन्हें उकसाते और ठगते रहे, जब तक थोड़ा–थोड़ा उठाते रहे, उन्हें उकसाते और ठगते रहे, जब तक थोड़ा–थोड़ा करके उन्हें विशाल खेल सिकुड़ नहीं गये और उस गरीबी के मुंह में नहीं गिर गये जहां से आज भी जी रहे है ।"[८]

परन्तु आज आदिवासी शिक्षित हो रहे हैं, जिससे उनकी अज्ञानता दूर हो रही है, और वे अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा करने के लिए सजग हो रहे हैं । आदिवासी समुदाय की व्यथा–कथा नहीं कहते बल्कि इनमें निहित आत्मभिमान, अस्तित्वबोध एवं अस्मिता और विद्रोही चेतना को भी अभिव्यक्ति का केन्द्र बनता हैं । आदिवासी साहित्य में आदिवासी जीवन के तनावों, यातनाओं और इन सबके बीच अपने को जिन्दा रखने की परिस्थितियों से जूझते हुए निरन्तर संघर्ष की शक्ति को रेखांक्ति किया गया है । ध्यान देने योग्य है कि आज आदिवासी समाज का मूल संघर्ष अब जल जंगल और जमीन तक ही सीमित नहीं बल्कि अपने शोषण से मुक्ति के लिए भी सक्रिया है ।

हरिराम मीणा कविता के माध्यम से आदिवासी में आये सजगता को लिखते है ।–

"... बस्तरिया आदिवासी भी अब
जानने लगे हैं
चुप्पी का दर्द
विद्रोह का सुख
वे समझने लगे है
अनपढ़ असंगठित रहने की पीड़ा ।"[९]

आदिवासी स्वभाव से बहुत भोले होते है । सब तरह से मैल वंचित वे नहीं समझ पाते उन चालाकियों को जो उनके विरूद्ध पनपती रही है । निमूला पुतुल लिखती हैं–

".... इन खतरनाक शहरी जानवरों को पहचानों चुड़का सोरेन तुम्हारे भोलेपन की ओट में
इस पेचदार दुनिया में रहते
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन ?
.....
"ये वो लोग है जो हमारे बिस्तर पर करते है
हमारी बस्ती का बलात्कार
और हमारी ही जमीन पर खड़ा हो पूछते
हमसे हमारी औकात ।"[१०]

अत: आदिवासीयों की मूल समस्या उनके अस्तित्व व अस्मिता को बचाये रखने की है । जिसे बचाने का कार्य आदिवासी साहित्य एवं साहित्यकार कर रहे हैं । आदिवासी जन व्यापक लोक का अभिन्न अंगे हैं । आदिवासी साहित्य के द्वारा आदिवासी अतीत की कुछ झलकियां, उनकी वर्तमान दशा और भविष्य के बारे में उनकी सोच और संवेदना काफी हद तक अन्य जन संप्रेषित हो रही है ।

अत: वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासीयों की जो सबसे बड़ी समस्या है वो हैं– अपने आपको बचाना, अपनी संस्कृति को बचाना, क्योंकि अगर विकास हो रहा है तो विकास के नाम पर उनकी संस्कृति को नोचा जा रहा है । उनकी सभ्यताओं का पतन हो रहा है । इसी पतन को रोकने के लिए आदिवासीयों एवं गैर–आदिवासीयों को मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता हैं ।

आज समय के साथ आदिवासी अपने अधिकारों, दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग हो गये हैं और समाज में एक नया सवेरा हो रहा है, जिसकी रोशनी में हर आदिवासी को उजाले में देखा जा रहा है ।

आदिवासी समाज जो हाशिये पर पहुंच गया है, उसे मुख्य धारा में लाने का दायित्व हम सभी का है, तभी आदिवासी भाषा, साहित्य और संस्कृति का विकास हो सकेगा । और उन्हें सही पहचान मिल सकेगी ।

अत: आदिवासी साहित्य समाज में अपना स्थान बना रहा है, सभी विमर्शों में आज आदिवासी विमर्श का प्रमुख स्थान है । साहित्य एवं लेखन के माध्यम से आदिवासी अस्तित्व एवं अस्मिता के सुरक्षित रखा जा सकता है ।

"देखा कलम की धार
तुम्हारे लिए,
हां तुम्हारे लिए,
कलम मौसम बदलेगी,
कलम मौसम बदलेगी ।"[११]

संदर्भ सूची

१. श्यामाचरण दुबे– परम्परा इतिहास बोध और संस्कृति, पृ.सं.६२
२. गंगा सहाय मीणा – आदिवासी साहित्य विमर्श, पृ.सं.३७
३. हरिराम मीणा – आदिवासी दुनिया, पृ.सं.२०३
४. हरिराम मीणा – आदिवासी दुनिया, पृ.सं.२०३
५. रमणिका गुप्ता, पृ.सं.१२७
६. गंगा सहाय मीणा, पृ.सं.३५
७. रमणिका गुप्ता, पृ.सं. १०२
८. डॉ. एम. फिरोज अहमद, पृ.सं. १८२
९. हरिराम मीणा – आदिवासी दुनिया, पृ.सं.२०२
१०. हरिराम मीणा – आदिवासी दुनिया, पृ.सं.२०२
११. हरिराम मीणा – आदिवासी दुनिया, पृ.सं.२०४